

सेवा

‘सेवा’ शब्द ‘स’ ओर ‘एव’ नामक दो शब्दों के मेल से बना है ‘स’ यानि वह और ‘एव’ यानि ‘ही’। अर्थात् ‘मैं’ के बिना जिसे किया जाता है वह सेवा है अर्थात् निष्काम कर्म। सेवा के उत्सुक व्यक्ति को अपने आपको शून्य बनाना पड़ता है।

जब तक अहंकार और ममत्व रहते हैं, तब तक सेवा करना असंभव है। अहंकार का मतलब है ‘मैं’ की उपस्थिति और ‘ममत्व’ अथात् मेरा। जब ये दोनों भाव दूर हो जाते हैं, तब सेवा भाव उत्पन्न होता है।

ध्यान नामक जलधि में साफ़ होकर तथा आत्मज्ञान नामक अग्नि में आहुति पड़ने के बाद सेवा साध्य हो पाती है। तब तक हम दूसरों के लिए जो भी करते हैं वह सब वाणिज्य है, सेवा नहीं। तब तक जीवन में सच्ची खुशी नहीं होती। सुख-दुख का आचरण तो होता रहता है पर सच्चा आनन्द तो सेवा से ही शुरू होता है। यह नहीं समझना चाहिए कि ज्ञान से ‘मैं’ और ‘मेरा’ की भावनाएँ जागती हैं बल्कि यह भावना उत्पन्न होती है कि सब जैसा मैं भा एक हूँ, हममें अहंकार नहीं आता।

ज्ञान प्राप्त करने के बाद दूसरों के प्रति हम जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा ही अपने प्रति भी करते हैं। यही है ‘एको ब्रह्म’ की स्थिति। अब सब अद्वैत हो गया है। मैं और तुम-ये दो बातें नहीं रहीं, एक ही बचा है। अब मानव ही माधव नहीं है, प्राणिमात्र ही माधव है, समस्त प्राणियों के प्रति बराबर का आदर भाव रख कर ही काम करेंगे। उस भावना स सब काम न्याय से, भेदभाव रहित होकर प्रज्ञा व करुणा के साथ करना ही सेवा तत्परता कहा जाता है।

इन्सान की प्रगति के पथ पर परमपद सोपान ही सेवा है।